HINDUSTANI MUSIC VOCAL (034) · CLASS - XII

The following notes are from April 2020 to 15th May 2020.

* Syllabus (Theory)
* Units covered in notes:

1. UNIT 1·1

Brief study of the following:
Alankar, Varna, Kan, Meend, Khatka, Murki, Gamak.

2. UNIT 4·2

Study of various parts and tuning of Tanpura.

3. UNIT 3·2

Life sketch and Contribution of Abdul Karim Khan, Faiyaz Khan, Bade Ghulam Ali Khan, Krishna Rao Shankar Pandit.

* All students are advised to write these notes in their theory note books and learn them by heart.

* The notes have been taken from Harish Chandra Srivastav's Book "Rag Parichay".

Oli Bhattacharya
P.G.T. (Music)
12.4.2020.

Scanned with CamScanner

HINDUSTANI MUSIC VOCAL (Code – 034)

Course Structure (2019-20)

Class XII

TOTAL: 100 Marks

No.	Units	No.of Periods	Marks
	Units 1	**12**	
1.1	Brief study of the following Alankar, Varna, Kan, Meend, Khatka, Murki, Gamak.	**05**	**06**
1.2	Brief study of the following Sadra, Dadra, Gram, Murchhana, Alap, Tana.	**07**	
	Unit 2	**12**	
2.1	Study of the following Classification of Ragas- Anicent, Medieval and Modern	**06**	**06**
2.2	Historical development of time theory of Ragas	**06**	
	Unit 3	**12**	
3.1	Detail study of the following I. Sangeet Ratnakar II. Sangeet Parijat	**06**	**06**
3.2	Life sketch and Cotribution of Abdul Karim Khan, Faiyaz Khan, Bade Ghulam Ali Khan, Krishna Rao Shankar Pandit	**06**	
	Unit 4	**12**	
4.1	Description of Prescribed Talas along with Tala Notation- Thah, Dugun, Tigun and Chaugun	**07**	**06**
4.2	Study of various parts and tuning of Tanpura	**05**	
	Unit 5	**12**	
5.1	Critical study of Prescribed Ragas along with Recognizing Ragas from phrases of Swaras and elaborating them	**05**	**06**
5.2	Writing in Notation the Compositions of Prescribed Ragas.	**07**	

* This is the entire syllabus for Theory.
* Practical syllabus will be given later.

Scanned with CamScanner

वर्ण—स्वरों के विभिन्न क्रम अर्थात् चाल को वर्ण कहते हैं। मोटे तौर से स्वरों की चलन चार प्रकार की हो सकती है अथवा दूसरे शब्दों में वर्ण चार प्रकार के होते हैं। 'अभिनव राग मंजरी' में कहा गया है, 'गान क्रियोच्यते वर्णः अर्थात् गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं।

(१) **स्थाई वर्ण**—जब कोई स्वर एक से अधिक बार उच्चारित किया जाता है तो उसे स्थाई वर्ण कहते हैं, जैसे—रेरे, गगग, मम आदि।

(२) **आरोही वर्ण**—स्वरों के चढ़ते हुये क्रम को आरोही वर्ण कहते हैं जैसे—सा रे ग म।

(३) **अवरोही वर्ण**—स्वरों के उतरते हुये क्रम को अवरोही वर्ण कहते है जैसे—नि ध प म ग रे सा।

(४) **संचारी वर्ण**—उपर्युक्त तीनों वर्णो के मिश्रित रूप को संचारी वर्ण कहते हैं। इसमें कभी तो कोई स्वर ऊपर चढ़ जाता है तो कभी कोई स्वर बार—बार दोहराया जाता है। दूसरे शब्दों में संचारी वर्ण में कभी आरोही, कभी अवरोही

Scanned with CamScanner

और कभी स्थाई वर्ण दिखाई देना है जैसे–सा सा सा रे ग म प ध प म प म ग रे सा।

अलंकार–नियमानुसार स्वरों की चलन को अलंकार कहते हैं। अलंकार में कई कड़ियाँ होती हैं जो आपस में एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। प्रत्येक अलंकार में मध्य सा से तार सा तक आरोही वर्ण और तार सा से मध्य सा तक अवरोही वर्ण हुआ करता है। 'संगीत दर्पण' में अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–

विशिष्ट-वर्ण-सन्दर्भमलंकार प्रचक्षते अर्थात् नियमित वर्ण–समूह को अलंकार कहते हैं। अलंकार का अवरोह, आरोह का ठीक उलटा होता है। नीचे कुछ उदाहरण देखिये–

(१) आरोह –सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनी और धनिसां।
अवरोह –सांनिध, निधप, धपम, पमग, मगरे और गरेसा।

(२) आरोह –सारेगरे, रेगमग, गमपम, मपधप, पधनिध, धनिसांनि।
अवरोह –सांनिधनि, निधपध, धपमप, पमगम, मगरेग, गरेसारे।

(३) आरोह –सागरेसा, रेमगरे, गपमग, मधपम, पनिधप, धसांनिध।
अवरोह –सांधनिसां, निपधनि, धमपध, पगमप, मरेगम, गसारेग, रेनिसारे।

इस प्रकार अनेक अलंकारों की रचना हो सकती है। अलंकार को पलटा भी कहते हैं। वाद्य के विद्यार्थियों को नित्य–प्रति अलंकार का अभ्यास करना चाहिये। इससे विद्यार्थियों की रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है और अंगुलियाँ अपने वाद्य पर विभिन्न प्रकार से घूमने योग्य हो जाती हैं। गायन में भी इसका कुछ कम महत्व नहीं है। कुछ मुसलमान गायकों का विचार है कि प्रारम्भिक विद्यार्थियों को अलंकार का अभ्यास खूब करना चाहिये, किन्तु कुछ गायक इसका विरोध करते हैं। उनका कहना है कि अलंकार का बहुत अधिक अभ्यास कराने से गुण के साथ-साथ कंठ में ऐसे दोष भी आ जाते हैं, जो जीवन भर बने रहते हैं और लाख हटाने पर भी नहीं हटते।

Scanned with CamScanner

मींड—**किन्हीं दो स्वरों को इस प्रकार गाने-बजाने को मींड कहते हैं जिनके बीच में कोई रिक्त स्थान न रहे।** दूसरे शब्दों में अटूट ध्वनि में एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाने को मींड कहते हैं। मींड लेते समय बीच के स्वरों का इस प्रकार स्पर्श होता है कि वे अलग-अलग सुनाई नहीं पड़ते। उदाहरणार्थ सा से म तक मींड लेते समय बीच के स्वरों का स्पर्श होता है, किन्तु वे अलग-अलग सुनाई नहीं पड़ते। मींड निकालने के लिये स्वरों के ऊपर उल्टा अर्ध-चन्द्राकार बनाते हैं जैसे—सा म। मींड भारतीय संगीत की विशेषता है। इससे गाने-बजाने में लोच और रंजकता आती है।

कण—**गाते-बजाते समय पीछे अथवा आगे के स्वर को स्पर्श मात्र करने को कण कहते हैं।** कण का अर्थ है तिनका, अतः स्पर्श किये गये स्वर की मात्रा का अनुमान कण शब्द द्वारा सरलता से लगाया जा सकता है। कण को स्पर्श

म रे

स्वर भी कहते हैं। **कण इस प्रकार** लिखते हैं— ग ग । यहाँ कण के रूप में म और रे प्रयोग किया गया है।

खटका और मुर्की—**चार या चार से अधिक स्वरों की एक गोलाई बनाते हुये स्वरों के द्रुत प्रयोग को खटका कहते हैं,** जैसे रेसानि़सा, सारेनि़सा अथवा नि़सारेसा। जिस स्वर पर खटका देना होता है, उसे कोष्टक स्वर से अथवा आगे-पीछे के स्वर से द्रुत गति में गोलाई बनाते हैं और उसी स्वर पर समाप्त करते हैं, जिसको कोष्टक से बन्द किया जाता है।

Scanned with CamScanner

खटका और मुर्की में केवल स्वरों की संख्या का अन्तर होता है। **मुर्की में द्रुत गति में तीन स्वरों का एक अर्धवृत्ति बनाते हैं जैसे**–रेनिसा अथवा धमप। खटके में चार अथवा पाँच स्वरों की अर्धवृत्ति बनाते हैं। मुर्की लिखने के लिए मूल स्वर के ऊपर बायीं ओर दो स्वरों का कण दिया जाता है जैसे $\overset{\text{धम}}{\text{प}}$।

गमक–गम्भीरतापूर्वक स्वरों के उच्चारण को गमक कहते हैं। गायन में गमक निकालने के लिए ह्रदय पर जोर लगाते हैं। शारङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर में गमक की परिभाषा इस प्रकार दी है–

स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृ-चित-सुखावहः।

अर्थात् स्वरों के ऐसे कंपन को गमक कहते हैं जो सुनने वालों के चित्त को सुखदाई हो। इस तरह प्राचीन काल में स्वरों के एक विशेष प्रकार के कंपन को, जो सुनने में अच्छी लगे, गमक कहते थे। उस समय गमक के १५ प्रकार माने जाते थे जैसे–कंपित, आंदोलित, स्फुरित, लीन इत्यादि। आधुनिक समय में न तो गमक को प्राचीन अर्थ में और न गमक के प्राचीन प्रकारों के नाम प्रयोग किये जाते हैं, बल्कि गमक के १५ प्रकारों में से अधिकांश खटका, मुर्की, मींड, जमजमा आदि के नाम से प्रयोग किये जाते हैं।

Scanned with CamScanner

तम्बूरा

इस वाद्य को तानपूरा के नाम से पुकारते हैं। उत्तर भारतीय संगीत में इसने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। इसका कारण यह है कि इसका स्वर बहुत ही मधुर होता है जो संगीत-कार्यक्रमों के लिये अनुकूल वातावरण की सृष्टि में सहायक होता है। तानपूरा की झन्कार सुनते ही गायक कुछ गाने के लिये मचल सा उठता है। इस वाद्य का उपयोग गायन अथवा वादन के साथ स्वर देने में सहायक होता है।

तानपूरा के तार और उन्हें मिलाने की विधि

तानपूरा अथवा तम्बूरे में चार तार होते हैं। प्रथम तार को मंद्र पंचम अथवा जिन रागों में पंचम स्वर नहीं होता है, मन्द्र के मध्यम से मिलाते हैं। उदाहरणार्थ मालकोश राग गाते समय इसे मंद्र मध्यम से मिलाते हैं। कुछ रागों में, न तो पंचम और न शुद्ध मध्यम ही प्रयोग होते हैं, जैसे–पूरिया या मारवा, तब इसे मन्द्र नि से मिलाते हैं। प्रथम तार पीतल का होता है। तानपूरे के दूसरे व तीसरे तार सदैव मध्य सप्तक के षडज से मिलाये जाते हैं। ये दोनों तार लोहे के होते हैं। चौथा व अंतिम तार पीतल का होता है। इसे मन्द्र षडज से मिलाया जाता है। यह तार अन्य तारों की तुलना में मोटा होता है।

स्त्रियों के तानपूरे का प्रथम तार भी लोहे का होता है और अन्य तार पुरुषों के तानपूरे के समान होते हैं। अधिक चढ़ाव-उतार के लिए तार को खूँटी से मिलाते हैं और थोड़े अंतर के लिये मनका से मिलाते हैं। मनका या मोती को नीचे करने से स्वर चढ़ता है।

तानपूरा के अंग

(१) तुम्बा–यह लौकी का बना हुआ गोल आकृति का होता है, जो डांड के नीचे के भाग से जुड़ा हुआ होता है।

Scanned with CamScanner

(२) **तबली**–गोल लौकी के ऊपर का भाग काटकर अलग कर दिया जाता है और खोखले भाग को लकड़ी के एक टुकड़े से ढँक दिया जाता है, जिसे तबली कहते हैं।

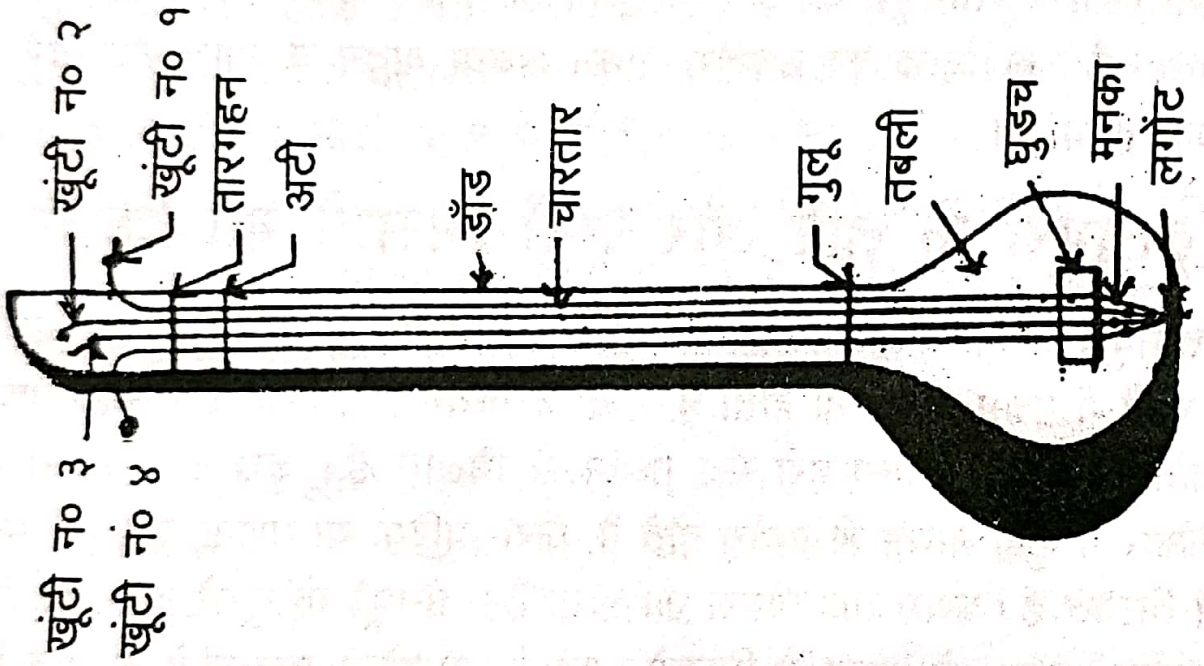

(३) **ब्रिज**–इसे घुड़च अथवा घोड़ी कहते हैं। यह तबली के ऊपर स्थित लकड़ी अथवा हड्डी की बनी हुई छोटी चौकी की आकार की होती है।

(४) **धागा**–घुड़च और तार के बीच सूत अथवा धागे को ठीक स्थान पर स्थित कर देने से तम्बूरे के झनकार में वृद्धि होती है।

(५) **कील, मोंगरा अथवा लँगोट**–तुम्बे के नीचे के भाग में तार को बाँधने के लिए एक कील होती है जिसे लँगोट अथवा मोंगरा भी कहते हैं।

(६) **पत्तियाँ**–सजावट के लिये तुम्बे के ऊपर लकड़ी की सुन्दर पत्तियाँ बनाई जाती हैं, जिन्हें श्रृंगार भी कहते हैं।

(७) **गुल**–जिस स्थान पर तुम्बा और डाँड के नीचे का भाग मिलता है, गुल कहलाता है।

Scanned with CamScanner

(८) **डाँड**–यह तानपूरे के ऊपर का भाग है जो लम्बी और पोली लकड़ी का बना होता है। इसके नीचे का भाग तुम्बे से जोड़ दिया जाता है और ऊपर के भाग में चार खूँटियाँ होती हैं। डांड के ऊपर चारो ओर तार तने रहते हैं।

(९) **अटी या अटक**–तानपूरे के चारों तार कील से घुड़च पर होते हुये ऊपर को जाते हैं। ऊपर की ओर सर्वप्रथम हाथी-दांत की एक पट्टी मिलती है, जिसके ऊपर चारों तार अलग-अलग रक्खे जाते हैं। इसे अटी या अटक कहते हैं।

(१०) **तारगहन अथवा तारदान**–अटी से होता हुआ तार पुनः ऊपर को जाता है जहाँ एक दूसरी पट्टी मिलती है। इस पट्टी में अलग-अलग चार छिद्र होते हैं। इन छिद्रों से होकर तार ऊपर जाता है। पट्टी को तारगहन भी कहते हैं।

(११) **खूटियाँ**–इससे चारों तार क्रमशः बाँध दिये जाते हैं। ये खूटियाँ तानपूरे के ऊपरी भाग में होती हैं। दो खूटियाँ तानपूरे के सामने के भाग में, एक डांड की बाई ओर और दूसरी दाहिनी ओर होती है।

(१२) **तार**–पीछे हम बता चुके हैं कि तानपूरे में चार तार होते हैं। पुरुषों के तानपूरे में प्रथम और अंतिम तार पीतल का और अन्य दो बीच के तार लोहे के होते हैं। स्त्रियों के तानपूरे में केवल अन्तिम तार पीतल का होता है और शेष लोहे के होते हैं।

(१३) **मनका**–स्वरों के सूक्ष्म अन्तर को ठीक करने के लिये मोती अथवा हाथी-दाँत के छोटे-छोटे टुकड़े तानपूरे के चारों तार में घुड़च और कील के मध्य अलग-अलग पिरोये जाते हैं जिन्हें मनका कहते हैं। इनसे तार के स्वर थोड़ा ऊपर-नीचे किये जाते हैं।

प्रश्न

(१) तानपूरे के अंगों को सचित्र समझाइये।

(२) तानपूरे के तारों को किन-किन स्वरों से और किस प्रकार मिलाते हैं ?

(३) पुरुषों और महिलाओं के तानपूरों में क्या अंतर होता है ? समझाइये।

Scanned with CamScanner

अब्दुल करीम खाँ

संगीत-जगत स्व0 अब्दुल करीम खाँ का बहुत ऋणी है। उन्होंने कई चोटी के कलाकारों का निर्माण किया। हीराबाई बड़ोदेकर, सरस्वती राने, रोशनारा बेगम, सुरेश बाबू माने, पंडित रामभाऊ कुन्दगोलकर (सवाई गंधर्व), बहरे बुआ आदि कलाविज्ञों के निर्माण का श्रेय अब्दुल करीम खाँ को है। उन्होंने ही ठुमरी को सरल और लोकप्रिय बना दिया। उन्हें ख्याल, ठुमरी, भजन तथा मराठी भाव गीतों पर समान अधिकार था। उन्हीं के सत् प्रयत्नों से अब करीब-करीब सभी गायक ठुमरी गाना पसंद करने लगे हैं। कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि स्वयं जनता की ओर से ठुमरी की फरमाइश हो जाती है।

खाँ साहब सहारनपुर जिले के किराना नामक गाँव के रहने वाले थे। आपके पिता काले खाँ तथा चाचा अब्दुल खाँ स्वयं अच्छे संगीतज्ञ थे जिनसे आपको संगीत की शिक्षा मिली। आपकी शिक्षा बचपन से ही शुरू हो गई थी और बालक करीम खाँ का गायन लोगों को आश्चर्य चकित कर देता था। बहुत छोटी सी उम्र से आप संगीत के जलसों में अपना कार्यक्रम देने लगे थे। थोड़ा बड़े होते ही आपको बड़ौदा दरबार में राज-गायक नियुक्त कर लिया गया। केवल तीन वर्षों तक बड़ौदा-नरेश की सेवा में रहने के बाद कुछ दिनों तक बम्बई में रहे और तत्पश्चात् मिरज चले गये।

खाँ साहब स्वयं एक उच्चकोटि के गायक हो चुके थे, किन्तु उनकी हार्दिक अभिलाषा अच्छे संगीतज्ञ और श्रोता उत्पन्न करने की थी। इसलिये उन्होंने एक संगीत विद्यालय की स्थापना 1913

Scanned with CamScanner

के लगभग पूना में की। उसका नाम 'आर्य संगीत विद्यालय' रक्खा। कुछ दिनों के बाद आपने बम्बई में इस विद्यालय की शाखा खोली और स्वयं बम्बई में रहने लगे। लगभग तीन वर्षों के बाद कुछ कारणवश आपको विद्यालय बन्द कर देना पड़ा और फलस्वरूप बम्बई छोड़कर मिरज में रहने लगे।

एक बार एक संगीत-कार्यक्रम के सिलसिले में आपको मिरज से मद्रास जाना पड़ा। वहाँ पर, आपका कार्यक्रम बड़ा सफल रहा। वहाँ से दूसरे संगीत कार्यक्रम के सिलसिले में पाँडिचेरी जाना पड़ा। रास्ते में ही आपकी तबियत खराब हो गई। यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी और सिंगपोयमकालम स्टेशन पर 11 बजे रात्रि में उतर जाना पड़ा। समय के साथ-साथ तबियत भी खराब होती गई। उन्हें भी अपने दिन करीब जान पड़ने लगे। बिस्तर पर नमाज़ पढ़ा और दरबारी काँहड़ा के स्वरों में खुदा की इबादत करने लगे। इसी प्रकार गाते-गाते उसी बिस्तर पर 27 अक्टूबर सन् 1917 को अंतिम सांस ली। वहाँ से उनका शव मिरज लाया गया जहाँ उन्हें दफना दिया गया।

खाँ साहब एकहरे बदन के व्यक्ति थे। स्वभाव से बहुत शान्त और मृदुभाषी थे। जैसा उनका गायन मधुर था वैसी ही उनकी बोलचाल। ठुमरी गाने में तो बड़े प्रवीण थे ही। ठुमरी के कुछ रिकार्ड, जो अक्सर ही आकाशवाणी से प्रसारित होते हैं, बड़े मधुर और आकर्षक हैं। 'मत जहियो राधे जमुना के तीर', 'पिया बिन नहीं आवत चैन' उनकी गाई हुई ठुमरियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। तार सप्तक में उनकी आवाज बड़ी सरलता से तथा स्वाभाविक ढंग से जाती थी। बंद गले का कोट और साफा ही उनका पहिनावा था। उनके हाथ में सदा एक छड़ी रहती थी। यद्यपि कि अब आप नहीं रहे, किन्तु संगीत-जगत आपको कभी भी भुला नहीं सकता।

■■■

Scanned with CamScanner

फैयाज़ खाँ

उत्तर भारतीय संगीत के विकास में घरानों का योगदान बड़ा सराहनीय रहा है। जब कभी आगरा घराने की चर्चा उठती है तो स्व0 उ0 फैयाज़ खाँ का स्मरण बरबस हो आता है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जो सम्मान फैयाज़ खाँ को मिला उतना किसी मुसलमान गायक को नहीं मिला।

काली शेरवानी और सफेद साफा पहनकर अपने शिष्यों के साथ रंगमंच पर बड़ी अदा के साथ जब पधारते, तो ऐसा मालूम पड़ता कि कोई पहलवान गायक आ गया है। हृष्ट-पुष्ट शरीर, बड़ी-बड़ी मूँछें, दोहरा बदन और लगभग 6 फीट की ऊंचाई से वे दूर से ही पहचाने जा सकते थे।

स्व0 उस्ताद फैयाज़ खाँ का जन्म सन् 1886 में आगरा में हुआ था। आपके जन्म से 3-4 माह पहले ही आपके पिता की मृत्यु हो गई थी। फैयाज खाँ के पिता का नाम सफदर हुसैन था। आपके नाना ने आप का पालन-पोषण किया। उन्होंने ही आपको संगीत की शिक्षा दी।

फैयाज़ खाँ किशोरावस्था से ही अच्छा गाने लगे थे। प्रत्येक स्थान पर आपका प्रभाव अच्छा पड़ता। तत्कालीन मैसूर-नरेश आपके गायन से बड़े प्रभावित हुये। आपको सन् 1906 में एक स्वर्ण पदक और सन् 1911 में 'आफ़ताबे मौसीकी' की उपाधि से सुशोभित किया गया। बड़ौदा महाराज सयाजीराव आपसे बड़े प्रभावित हुये और आपको अपने दरबार में नियुक्त कर लिया। फैयाज़ खाँ में पितृवंश से 'रंगीले' और मातृवंश से आगरा घराने का योग था। उन्होंने दोनों प्रकार की गायकी का सुन्दर समन्वय अपने गायन में किया।

Scanned with CamScanner

खाँ साहब का कंठ नीचा किंतु भरा, जवारीदार और बुलन्द था। काफी नीचे स्वर से गाते थे और गाते समय अपने 'मूड' का बहुत ध्यान रखते थे। बहुत सज-धजकर बैठते और हिना का इत्र लगाकर पान की डिब्बी के साथ बैठते। खाँ साहब ख्याल, ध्रुपद, धमार, ठुमरी, टप्पा, ग़ज़ल, कव्वाली आदि सभी के गायन में बड़े कुशल थे। ख्याल, ध्रुपद और धमार में तो अद्वितीय थे, किन्तु मोटी आवाज से ठुमरी के प्रत्येक अंग को इस सुन्दरता से प्रस्तुत करते थे कि बड़ा आश्चर्य होता। उनकी गाई हुई ठुमरी का रिकार्ड 'बाजूबन्द खुल-खुल जाय' बड़ा प्रसिद्ध है। ख्याल में भी ध्रुपद-धमार के समान नोम-तोम का आलाप करते। बीच-बीच में 'तू ही अनन्त हरि' भी कभी-कभी बोलते। विस्तृत आलाप करने के बाद गीत की बंदिश शुरू करते। उनके स्वर लगाने की रीति आगरा घराने का प्रतिनिधित्व करती है और सुनते ही उस घराने की याद आ जाती है। उनका यह अंग उनके शिष्यों में थोड़ा-बहुत मिलता है।

फैयाज़ खाँ की गायकी में बड़ी रंगत थी। वे बोल-बनाव और बोल-तान में, जो आगरा घराने की विशेषता है, बड़े निपुण थे। ऐसे-ऐसे स्थान से बोल बनाते हुये सम से मिलते कि सुनने वालों को दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती। बीच-बीच में कव्वाली के समान बोल बनाते समय हाँ-हाँ भी करते जिससे और रंगत बढ़ जाती। स्वर, लय और ताल पर उन्हें पूर्ण अधिकार था। कहीं से भी गला घुमा देते और बंदिश से मिल जाते, लेकिन सही स्थान पर पहुँचते। जबड़े की तानों का बहुत प्रयोग करते, किन्तु उनकी तानें स्पष्ट, सुन्दर और तैयार थीं। उनका राग-ज्ञान बहुत अच्छा था। वे प्रत्येक राग अलग-अलग ढंग से गा सकते थे।

Scanned with CamScanner

फैयाज खाँ एक अच्छे रचनाकार भी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपना नाम 'प्रेमप्रिया' रक्खा था। उन्होंने बहुत सी अच्छी बंदिशों की रचना भी की। जैजैवन्ती में 'मोरे मन्दिर अब लौ नहीं आये' तथा राग जोग में 'आज मोरे घर आये' आदि गीतों की रिकार्डिंग भी हो चुकी है, और ये गीत बहुत लोकप्रिय हैं। ललित राग में निबद्ध 'तड़पत हूँ जैसे जल बिन मीन' तथा नट बिहाग में 'झन-झन पायल बाजे' रेकार्ड्स भी बड़ी उच्चकोटि की हैं।

बड़ौदा दरबार में रहते हुये भी वे महाराजा की आज्ञा से संगीत-सम्मेलनों तथा आकाशवाणी-कार्यक्रमों में भाग लेने जाते। जैजैवन्ती, ललित, दरबारी, सुघराई, तोड़ी, रामकली, पूरिया, पूर्वी आदि उनके प्रिय राग थे। उनके प्रमुख शिष्यों में स्व0 पं0 यस0 यन0 रातनजनकर, दिलीप चन्द्र बेदी, विलायत हुसैन, लताफत हुसैन, शराफत हुसेन, अजमत हुसेन, अता हुसेन आदि थे। खाँ साहब का देहावसान 5 नवम्बर सन् 1950 को बड़ौदा में हुआ।

■■■

Scanned with CamScanner

बड़े गुलाम अली खाँ

पटियाला घराने के उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ को कौन ऐसा संगीत-प्रेमी होगा जो न जानता होगा? आप जितना शास्त्रीय संगीत-जगत में प्रसिद्ध थे, कम से कम उतना ही फिल्म-जगत में भी प्रसिद्ध थे। आपकी गाई ठुमरियाँ 'आये न बालम का करू सजनी' तथा 'याद पिया की आये' इतनी प्रसिद्ध हुईं कि हर व्यक्ति के कानों में गूँजती हैं।

Scanned with CamScanner

आपका जन्म सन् 1901 में लाहौर में हुआ। आपके पिता का नाम उस्ताद काले खाँ था जिनकी वंश-परम्परा संगीतज्ञों की थी। बाल्यकाल से ही घर में संगीत का वातावरण था। गुलाम अली ने पहले अपने चाचा से संगीत की शिक्षा लेनी शुरू की। दुर्भाग्यवश कुछ ही दिनों के बाद उनकी मृत्यु हो गई। अतः वे अपने पिता से संगीत-शिक्षा लेने लगे। कुछ दिनों तक आप सारंगी भी बजाते रहे। आपके तीन छोटे भाई थे– बरकत अली, मुबारक अली तथा अमीन अली खाँ।

कुछ समय के बाद आप बम्बई चले गये और उस्ताद सिन्धी खाँ से गायन सीखने लगे। कुछ समय तक वहाँ रहने के बाद पिता के साथ लाहौर लौट गये। आपकी ख्याति धीरे-धीरे बढ़ने लगी। आपका पहला कार्यक्रम कलकत्ता संगीत-सम्मेलन में हुआ। उस कार्यक्रम से ही आपकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी।

सन् 1947 में विभाजन के बाद आप हिंदुस्तान छोड़कर करॉंची, पाकिस्तान में रहने लगे। बीच-बीच में कभी-कभी संगीत-सम्मेलनों में भाग लेने के लिये हिन्दुस्तान आया करते थे। उनका मन वहाँ न लगा। उन्होंने भारत लौटने की इच्छा प्रकट की और भारत सरकार ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसके बाद से वे बम्बई में रहने लगे। सन् 1960 के पास वे लकवें से पीड़ित हो गये और खाट पकड़ लिया। उस समय आर्थिक दृष्टि से काफी परेशानी सामने आ गई। कारण, उन्होंने कभी भी पैसा इकट्ठा करने की कोशिश नहीं की। जितना भी मिला उसे कुछ ही दिनों में साफ कर दिया। इसलिये अक्टूबर 1961 में महाराष्ट्र सरकार ने उन्हें 5 हजार आर्थिक सहायता औषधि के लिये दी। कुछ समय के बाद वे अच्छे हो गये और अपना कार्यक्रम देने लगे। आपने कई बार अखिल भारतीय आकाशवाणी कार्यक्रम के अन्तर्गत अपना कार्यक्रम प्रसारित किया। इलाहाबाद,

Scanned with CamScanner

वाराणसी, कलकत्ता, दिल्ली, जम्मू, श्रीनगर आदि जहाँ भी कोई भी अच्छा संगीत-सम्मेलन होता, आपको अवश्य ही निमन्त्रित किया जाता।

खाँ साहब स्वभाव के बड़े सरल और मिलनसार थे, किन्तु मूडी थे। जब जहाँ मन आता गाने लगते। गाना उनका व्यसन था। बिना गाना गाये रह नहीं सकते थे। गाते-गाते गायन में प्रयोग भी करते थे। एक बार बात करते-करते कोमल ऋषभ की यमन गाने लगे, लेकिन स्वरूप में कहीं अन्तर नहीं दिखाई पड़ा, यद्यपि कि ऋषभ कोमल था। स्वरों पर उन्हें इतना नियन्त्रण था कि कठिन से कठिन स्वर-समूह बड़े सरल ढंग से कह देते। गले की लोच तो अद्वितीय थी। जहाँ से चाहते, जैसा भी चाहते, गला शीघ्र घुमा लेते थे। पंजाब अंग की ठुमरी में तो आप बड़े सिद्धहस्त थे। पेचीदी हरकतें, दानेंदार तानें, कठिन सरगमों से मानों वे खेल रहे हों। उनकी हरकतों पर सुनने वाले दाँतों तले अंगुली दबा लेते थे, किन्तु उनके लिये जैसे कोई साधारण-सी बात थी। आवाज आपकी जितनी लचीली थी, आप उतने ही विशालकाय थे। बड़ी-बड़ी मूँछें, कुरता और छोटी मोहरी का पायजामा और रामपुरी काली टोपी से पहलवान से मालूम पड़ते थे, लेकिन गायन और बोलचाल में ठीक इसके विपरीत थे।

संगीत के घरानों के विषय में आपका कहना था कि घरानों ने संगीत का सत्यानाश कर दिया है। घरानों की आड़ में लोग मनमानी करने लगे हैं, फलस्वरूप बहुत मतमतांतर हो गये हैं। ऐसे ही लोग घरानों को बदनाम करते हैं। मुद्रा-दोष के संदर्भ में बड़े गुलाम अली खाँ का विचार था कि गाते समय बिना मुँह बिगाड़े तथा बिना किसी किस्म का जोर डाले स्वरों में जान पैदा करनी चाहिये। संगीत का महान सेवक सदा-सदा के लिये 23 अप्रैल 1968 को हम लोगों से अलग हो गया। उनके पुत्र मुनव्वर अली भी कुछ दिनों बाद ईश्वर के प्यारे हो गये।

■■■

Scanned with CamScanner

पंडित श्री कृष्णराव शंकर

पं० कृष्णराव शंकर जी का जन्म 21 जुलाई 1894 को दक्षिण ब्राहम्ण परिवार में ग्वालियर में हुआ। इनके पिता श्री शंकर राव जी बहुत अच्छे संगीतकार थे। उन्होने श्री कृष्णराव की संगीत विद्या बचपन में ही शुरू कर दी थी। थोड़ी देर बाद इनके पिता जी ने श्री हद्दू खां और नत्थू खां से शिक्षा दिलाई।

पं० कृष्णराव शंकर

उस्ताद लोगों से सीखने और मेहनत करने के बाद आप संगीत की दुनिया में काफी लोकप्रिय हो गए। गायन में लयकारी का काम बहुत अच्छा करते थे जिस कारण श्रोता और दूसरे संगीतकार भी इनकी प्रशंसा खुले दिल से करते थे।

पं० जी का स्वभाव बहुत ही सरल एवं कोमल था। गायन के साथ साथ आपने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें 'संगीत प्रवेश', 'संगीत सरगम सार', 'संगीत आलाप संचार' बहुत प्रसिद्ध हुई। सन् 1913 में ग्वालियर के राजा सतारा ने इनको शिक्षक के रूप में नियुक्त कर लिया। इसके बाद इन्होनें आधुनिक ग्वालियर नरेश और उनकी बहन कमला को संगीत की शिक्षा दी। कुछ समय बाद दरबार छोड़कर देश की यात्रा पर निकल पड़े। इसके बाद आप जी ने अपने पिता जी के नाम पर 'शंकर गंधर्व विद्यालय' शिक्षा संस्थान स्थापित किया। आज भी यह संस्था अच्छा काम कर ही है। 1926 में फिर दोबारा पंडित जी को आलिया कौंसल की तरफ से ग्वालियर के दरबार में दरबारी गायक नियुक्त कर लिया।

पं० जी को गायकी में राग की शुद्धता पर विशेष ध्यान रहता था। पं० जी की गायन शैली संगीत की दुनिया में अपना खास स्थान रखती है। राग और लय पर आपका अधिकार स्पष्ट दिखाई देता है खुली और वज़नदार आवाज़ ग्वालियर घराने की विशेषता रही है पं० जी मुश्किल हरकतें और तानें बड़े आराम से तीनों सप्तकों में गा जाते थे । शुरू से ही लय कायम करके स्थायी के साथ आलापचारी करना आपके गायन की विशेषता रही है। गमक, ज़मज़मा, तानों और खटकों का प्रयोग आप की गायकी को चार चांद लगा देता था।

आप को 1947 में ग्वालियर के महाराज ने 'संगीत अलंकार' की उपाधि से सम्मानित किया। 1962 में खैरागढ़ विश्व विद्यालय ने आप जी को डॉक्टरेट (पी.एच.डी.) की उपाधि से सम्मानित किया। 1973 में भारत सरकार की ओर से 'पद्म विभूषण' से आपको सम्मानित किया गया। 1980 में आपको 'तानसेन' एवार्ड मिला। आप जी के शिष्यों में आपके सुपुत्र पं० लक्ष्मण रवि शंकर, प्रो० साराचन्द्रा, बाला साहेब पूंछ वाले और आपकी पौत्री मीता पंडित जी का नाम विशेष है।

अंत में संगीत की सेवा करते हुए पंडित ने 22 अगस्त 1989 को ग्वालियर में आखिरी सांस ली। संगीत के इतिहास में पं० जी का नाम सदा रोशन रहेगा।

ooooo

Scanned with CamScanner